

अध्याय—3

दासों का सामाजिक—सांस्कृतिक जीवन

प्रस्तुत अध्याय के अन्तर्गत दासों के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन के विविध पक्षों का गहनतापूर्वक अनुशीलन करने का प्रयास किया गया है। इसके अन्तर्गत उनके रहन—सहन, उनके पारिवारिक जीवन, उनके साथ किये जाने वाले व्यवहार, उनकी साम्प्रतिक अधिकार, उनके दासता से मुक्ति के विधान आदि तथ्यों को जानने का प्रयास किया गया है। साथ ही साथ इसी के अन्तर्गत देवदासियों के सामाजिक जीवन को भी संक्षिप्त में उकेरा गया है।

प्राचीन भारतीय साहित्यिक तथा अभिलेखिक स्रोतों में दासों के सन्दर्भ में अनेक आख्यान उपलब्ध हैं जिनके आधार पर दासों की सामाजिक स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है।

सैंधव सभ्यता काल में साहित्यिक स्रोतों की भूमिका न होने से इस सन्दर्भ में एकमात्र अनुमान ही किया जा सकता है। किन्तु स्पष्टतः कोई मत स्थापित करना मुश्किल है। किन्तु वैदिककालीन साक्ष्यों में आये दास—दस्युओं के आख्यान और दासों के लिए प्रयुक्त अब्राह्मन, अदेवयुः, अन्यव्रत, मृधवाचः, अनासा से सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि सामाजिक जीवन में उनकी स्थिति निम्नतम् बिन्दु पर विद्यमान था।

महाकाव्यकालीन साक्ष्यों रामायण एवं महाभारत में दासता संदर्भित अनेक दृष्टांत प्राप्त होते हैं। रामायण में शुनःशेष का आख्यान महत्वपूर्ण है जिसे यज्ञ में बलि हेतु बेचा गया था।¹ दासता की स्थिति का वर्णन के लिए दासभाव, दास्य² और दासत्व³ जैसे शब्दों का प्रयोग मिलता है। इन शब्दों के जो सामान्य अर्थ हैं उनमें दासता के सब प्रकारों का अन्तर्भाव है। दूसरी ओर दासीभाव⁴ शब्द से न केवल एक नारी की स्थिति की दास-दशा⁵ का बोध होता है, कम से कम इस विशेष प्रसंग में तो, उस सब कुछ का बोध होता है जो एक आदमी के साथ किया जा सकता है। द्रोपदी के संदर्भ में आख्यान मिलता है कि रजस्वला होने पर भी उसे (जुए में हारने के कारण) जबरन घसीटकर राजसभा में लाया जाता है। अपनी ओर से यदि द्रोपदी को उनकी दासी हो जाने का विश्वास हो जाता तो उनकी स्थिति बड़ी विषम हो जाती और कानूनन वह उनके आदेशों को मानने के लिए बाध्य हो जाती। तात्पर्य यह है कि उस समय के समाज में दासों के लिए न किसी प्रकार के संरक्षण का विधान था और न ही किसी प्रकार के सोच-विचार का। रामायण के संदर्भ में कहा जा सकता है कि मंथरा अपने विचारों के माध्यम से कैकेयी को तभी यकीन दिला सकी जब रानी को ध्यान दिलाया कि राजा कोई भी बने, मंथरा को क्या फर्क पड़ता है, उसकी नियति में तो दासी ही बने रहना है।⁵

बौद्धकालीन राजतंत्रात्मक राज्यों में हम दासों को सेना में भी देखते हैं, जिन्हें 'दासक-पुत्र' (दासों के पुत्र) कहा गया है। दासों को राजकीय

अश्वशालाओं में भी नियुक्त करने के आख्यान मिलते हैं। बहुत सम्भव है कि उनके भाग्य उनकी देखरेख में दिए गए पशुओं के साथ जुड़े रहते थे। जैसे कि एक हाथी के साथ उसकी देखरेख करने वाले आदमी के स्थानान्तरण से सूचित होता है।⁶

इस काल में खेतों में श्रमिकों के रूप में दासों का उल्लेख प्राप्त होता है। बड़े-बड़े जमींदार, श्रेष्ठि, भू-स्वामी आदि अनेक दासों को रखते थे। इस काल में नई जमीनों को खेती योग्य बनाया जा रहा था जिसमें लौह तकनीक का प्रयोग किया जा रहा था। लोहे की कुल्हाड़ी के प्रयोग से बड़े स्तर पर जंगल की कटाई संभव हुई।⁷ इस प्रकार साफ की गई भूमि को लोहे के हल-फल से खेती योग्य बनाया जाता था।⁸ यह काम दासों और नौकरों द्वारा किया जाता था, जैसा कि हमें जातक में देखने को मिलता है, जहाँ सावत्थी का एक ब्राह्मण भूमि को कृषि योग्य बनाने के लिए पेड़ों को कटवाता है।

दासों को राजमहलों एवं घरों में नौकरों के रूप में नियुक्त करने का उल्लेख मिलता है। राजकुमार के अन्तःपुर में तीन प्रकार की नारियाँ होती थी-पत्नियाँ, नाटक-इत्थियाँ और नौकर-चाकर। 16000 नारियों से पूर्ण अन्तःपुर की बात सुनकर कोई आश्चर्य नहीं होता।⁹ इन 16000 में 7000 पत्नियाँ हैं और बाकी नाटक-इत्थियाँ।¹⁰ उदाहरणार्थ चुल्लसोमजातक में 16000 में से 700 को भार्या कहा गया है।¹¹ अन्यत्र नाटक-इत्थियों को स्वामी द्वारा मनचाहे व्यक्ति को हस्तांतरित करने का भी उल्लेख मिलता है। यहाँ तक

कि अपने पुत्र को स्थानांतरित करने का। उदाहरणार्थ बिम्बसार ने अपनी नाटक-इत्थियों में एक को अपने पुत्र को दिया था।¹²

दासों और नौकरों का एक अन्य काम अनुचर वर्ग में रहता था। विनयपिटक में एक राजकुमार का राजसी अनुचर वर्ग मिलता है।¹³ रानियाँ अपना अनुचर वर्ग पतियों से प्राप्त करती थीं जैसे उदयन की तीन रानियाँ¹⁴ अथवा राजा ओक्कक की पांच पत्नियाँ¹⁵ प्राप्त करती हैं। शुद्धोधन द्वारा भेजे गये अनुचर वर्ग का साक्ष्य भी मिलता है। इन्हें धायों अथवा धात्रियों के रूप में बच्चों के देखभाल हेतु भी नियुक्त किया जाता था।

दास-दासियों का सबसे अधिक कार्य रसाईघर में होता था। घरेलू कार्यों के अनुसार इनके अनेक अलग-अलग नाम मिलते हैं-कुंभदासी, वीहिकोटिक, पेसनदारिका आदि।¹⁶ दासों को द्वार-रक्षक अथवा दौवारिक के रूप में नियुक्त करने का दृष्टांत भी मिलता है। एक श्रेष्ठ सुदत्त अनाथपिण्डक ने विहार की द्वार-रक्षा हेतु एक दास दिया था।¹⁷

दासों को धार्मिक कार्यों व अनुष्ठान में भी प्रयोग किया जाता था। ऐसे दास व नौकर भी मिलते हैं जिनका कार्य भिक्षुओं को बुलाकर अपने स्वामी के घर ले जाना होता था।¹⁸

दास-दासियों को व्यापारियों द्वारा भी विभिन्न कार्यों में प्रयुक्त किया जाता था। ऐसा उल्लेख मिलता है कि जब अनाथपिण्डक को उपवन खरीदने

के लिए सोने की जरूरत पड़ी तब दासों ने जाकर सोना खोजा¹⁹ इसी श्रेष्ठि के दास और नौकर अन्य श्रेष्ठि के काफिले को लूटने के लिए गये।²⁰

दासों-दासियों के वेश-भूषा प्रायः स्वतन्त्र दरिद्रों से भिन्न नहीं होते थे। ये दोनों ही फटेहाल रहते थे ऐसा दृष्टान्त संयुक्तनिकाय में प्राप्त होता है।²¹ जहाँ तक इनके भोजन का सम्बन्ध है, इस सन्दर्भ में बौद्धग्रन्थों से कुछ सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। साधारणतः दास कम्भकारों को चावलों की खुद्दी का दलिया दिया जाता था जो कनाजकम् बिलंगु-दुतियकम्²² कहलाता था। अन्यत्र²³ कहा गया है कि साधारणतः गृहस्थ लोग अपने दासों और नौकरों को यही भोजन दिया करते थे। कहने की कोई आवश्यकता नहीं कि मालिकों के खाने के बाद बचा जूठन घर के नौकरों और दासों में बाँटा जाता था। यह विचार महाभारत²⁴ में भी दृष्टव्य है जहाँ दासी के रूप में सेवा करने के लिए बाध्य हुई दमयन्ती यह शर्त रखती है कि वह मालिक की जूठन स्वीकार नहीं करेगी।

प्राचीन ग्रन्थों में दासों के सन्दर्भ में व्यक्तिवाचक नामों का उल्लेख अपवाद स्वरूप ही मिलता है। प्रायः इन्हें दास या दासी ही कहा जाता था। इनके कुछ नाम इस प्रकार मिलते हैं-बीजक, चन्न, दासक, काक, कटहक, पुन्नक, विदुर, विडुडभ आदि। यद्यपि उल्लेखनीय है कि इनमें कुछ नाम स्वतंत्र लोगों के भी थे, दूसरे कई नामों के साथ दास शब्द जोड़ने का रिवाज भी प्रचलित था। जैसे-महिदास ऐतरेय, गिरिदास आदि। दास और नौकर अपने

मालिकों को सामान्यतः इन शब्दों में संबोधित करते थे—अरिय, अय्य अथवा अज्ज (अय्या अथवा अज्जा का बहुवचन)²⁵। इन्हें अय्यपुत्त भी कहते थे, जिसका अर्थ है मालिक का बेटा²⁶ अथवा साधारणतया मालिक।²⁷

प्राचीन आख्यानो में दासों के आचरण विषयक अनेक नियम कानून दिये गये हैं। इन्हें दासों के संरक्षण, दासों के अपराध, उनके मुक्ति के विधान, उनके साम्पत्तिक अधिकार आदि का उल्लेख प्राप्त होता है, जिसका यथास्थान आगे उल्लेख किया गया है।

दास—दासियों के साम्पत्तिक अधिकार

दास—दासियों के साम्पत्तिक अधिकार अत्यन्त सीमित थे। वैदिक साहित्य इस विषय में मौन है। गौतम ने दासी को दूसरे (मालिक) की सम्पत्ति माना जिसे बेचा अथवा बंधक रखा जा सकता था।²⁸ प्राचीन बौद्ध ग्रन्थों में भी दासों के साम्पत्तिक अधिकारों को मान्यता नहीं दी गई। एक जातक कथा में एक दासी एक दिन की मजदूरी का धन मालिक को न दे सकने के कारण उसे शारीरिक दण्ड दिये जाने का विवरण है।²⁹ सबसे पहले कौटिल्य ने दासों के साम्पत्तिक अधिकारों को मान्यता दी थी। उनके अनुसार अपने को बेच देने वाले पुरुष के पुत्रादि आर्य ही माने जाते थे और वे अपने मालिक की आज्ञा से (काम करके) धन अर्जित कर उसे अपने पास रख सकते थे। आर्य दास की सम्पत्ति भी उसके परिवारजनों को ही मिलती थी।³⁰ (उसके स्वामी को नहीं)

मनु ने पत्नी, पुत्र एवं दास के साम्पत्तिक अधिकार को स्वीकार नहीं किया। उनके अनुसार, इनकी सम्पत्ति का अधिकारी उनका स्वामी होता है।³¹ महाभारत में भी कहा गया है कि दास जो कुछ भी धनादि पैदा करता है, वह उसके स्वामी का होता है।³²

विष्णु³³, कात्यायन³⁴, बृहस्पति³⁵ तथा नारद³⁶ ने दासों को साम्पत्तिक अधिकार दिये जाने का विरोध करते हुए कहा कि दास स्वयं अपने मालिक की सम्पत्ति होता है तथा उसकी सम्पत्ति पर उसके स्वामी का अधिकार होता है। केवल आत्म-विक्रय से प्राप्त होने वाला धन दास का अपना होता था। याज्ञवल्क्य ने एक ओर तो दासी से उत्पन्न शूद्र पुरुष के पुत्र को अपने पिता से ही सम्पत्ति का वैधानिक दायदा माना और कहा कि पिता के मरणोपरान्त परिणीता पत्नी से उत्पन्न पुत्र, दासी-पुत्र को सम्पत्ति का आधा भाग दे। विवाहिता पत्नी के पुत्र एवं विवाहिता पुत्रियों तथा उनके पुत्रों के अभाव में वह (दासीपुत्र) समस्त सम्पत्ति प्राप्त करने का अधिकारी था।³⁷ नारद ने स्वामी के प्राणों की रक्षा करने वाले दास को मालिक की सम्पत्ति में उसके (मालिक के) पुत्र के समान अंशग्राही माना।³⁸ मृच्छकटिक नाटक के विवरण से संकेत मिलता है कि दास-दासी कम से कम कुछ व्यक्तिगत धनादि अपने पास रख सकते थे।³⁹

पूर्वमध्यकाल में भी दास-दासियों के साम्पत्तिक अधिकारों को मान्यता नहीं दी गई। परन्तु मनु (8/146) की टीका में भारुचि ने लिखा की पत्नी,

पुत्र और दास की वस्तुएँ एवं धन आदि उनकी सहमति से उनके मालिक इस्तेमाल कर सकते थे।⁴⁰ मेधातिथि भी इस श्लोक का अर्थ यही निकालते हैं किन्तु देवणभट्ट के अनुसार इससे सम्पत्ति पर उसके स्वामी के अधिकार को मानते हैं।⁴¹ अग्निपुराण में भी दासी से उत्पन्न होने वाले शूद्र के पुत्र को पिता की सम्पत्ति में हिस्सा छिपा है।⁴² परन्तु कुल मिलाकर यही कहना अधिक सार्थक लगता है कि दासों के साम्पत्तिक अधिकार नगण्य ही थे और इसीलिए विपन्नता से उबरकर दासता से मुक्ति पाना उनके लिए अत्यन्त दुर्लभ कार्य था।

दासता से मुक्ति के नियम एवं परिस्थितियाँ

परतंत्रता दासता का सबसे बड़ा अभिशाप था। दीघनिकाय के अनुसार दास वह है जिसका स्वयं अपने पर अधिकार नहीं होता, जो दूसरों के अधीन होता है और अपनी इच्छानुसार कहीं जा नहीं सकता।⁴³ दास और नौकर/श्रमिक के बीच मूलभूत अंतर यही था कि दास अधिकारों से पूर्णतया वंचित और पराधीन था, जबकि नौकर स्वतंत्र था।⁴⁴ दास-दासी कुछ गिनी चुनी परिस्थितियों में ही स्वतंत्र हो पाते थे। वैदिक साहित्य में इनकी मुक्ति-विषयक नियमों के विवरण अप्राप्य हैं। किन्तु ऋग्वेद में धन देकर स्वतंत्रता प्राप्त करने वाले दास का उल्लेख है।⁴⁵ प्राचीन बौद्ध साहित्य में दासता से मुक्ति पाने के कुछ नियम वर्णित हैं और स्वतंत्रता प्राप्त करने वालों

के कुछेक उदाहरण भी मिलते हैं जो अधिकांशतः भिक्षु-भिक्षुणी बनने के इच्छुक दास-दासियों के हैं। दीघनिकाय के अनुसार, संन्यास लेने पर, धारक मूल्य देकर अथवा स्वामी की इच्छा एवं प्रसन्नता से दास स्वतंत्र हो सकता था।⁴⁶ कभी-कभी विशेष शुभ समाचार देने वाले दास-दासी को भी मालिक स्वतंत्र कर देते थे। मज्झिमनिकाय से हमें पता चलता है कि जब एक दासी ने रट्ठरदास को एक संन्यासी के वेष में आया देखकर अपनी मालकिन को इसकी सूचना दी, तो मालकिन ने कहा कि 'अगर तुम्हारी यह बात सच निकलती है, तो मैं तुम्हें स्वतंत्र कर दूंगी।'⁴⁷ श्रेष्ठि अनाथपिंडक ने अपनी क्रीता दासी पूण्णा की तार्किक दक्षता से प्रसन्न होकर उसे मुक्त कर दिया था। वह भिक्षुणी बन गई थी।⁴⁸ एक दासी ने अपनी मालकिन को महात्मा बुद्ध के उपदेश सुनने के लिए उत्प्रेरित किया था। बाद में उसने (मालकिन ने) उसे स्वतंत्र कर दिया था।⁴⁹ दो युवा दासों को भी स्वतंत्र किए जाने का विवरण मिलता है।⁵⁰ भोग्या दासियों की स्वतंत्रता का नियम सभी कालों में लागू रहा।

कौटिल्य⁵¹ ने विभिन्न प्रकार के आर्य वर्ण के दास-दासियों की मुक्ति के लिए उदार नियम बनाए थे जिनका विवरण निम्नवत है—

भरण-पोषण अथवा गिरफ्तारी या अन्य संकट के कारण बना दास और बंधक रखा गया दास एवं क्रीत दास, संकट टल जाने पर उचित मूल्य अदा करने पर और युद्ध में पराजय के कारण बना दास विजेता के यहां काम करके

अथवा अपनी (विक्रय मूल्य की) आधी धनराशि देकर मुक्त हो सकते थे। कौटिल्य ने यह भी व्यवस्था दी कि मालिक द्वारा दासी को अपवित्र कार्यों में लगाने पर अथवा उससे दुराचार करने पर, उस दास को मुक्त कर दिया जाना चाहिए और धारक मूल्य प्राप्त करने के बाद तथा अकारण दास को मुक्त न करने वाले स्वामी के लिए क्रमशः 12 पण एवं कारावास के दंड का प्रावधान किया। एक बार मुक्त हुए दास-दासी को पुनः बंधने या बंधक रखने वाले स्वामी द्वारा 12 पण का अर्थदंड देय था।

स्वयं दासता स्वीकार करने वाला व्यक्ति यदि अपने मालिक के यहां से भाग जाता था तो वह स्वतंत्र होने का अधिकार खो देता था और किसी संबंधी या अन्य के द्वारा बंधक रखे गए दास के मालिक के घर से काम छोड़कर दो बार भागने पर उसे आजीवन दास रहना पड़ता था।

मालिक के द्वारा उसकी दासी से संतान उत्पन्न हो जाने पर दासी एवं उसका पुत्र/पुत्री दासता से मुक्ति पा जाते थे। यदि वह दासी अपने स्वामी की पत्नी बनकर उसके घर में रहना चाहती थी तो उसके बदले में उसकी माता, बहन एवं भाई आदि स्वतंत्रता प्राप्त करने के अधिकारी थे।

धर्मशास्त्रकारों तथा अन्य लेखकों ने आर्य अनार्य दासों में भेद नहीं किया और सभी दास-दासियों के लिए एक समान नियम बनाए। बौद्ध विद्वान असंग ने इस संदर्भ में केवल इतना कहा कि दूसरों के द्वारा दास बनाए गए

लोगों को उसी प्रकार मोक्ष की प्राप्ति होती है जिस प्रकार कोई पुरुष दासता से मुक्ति पाता है।⁵² याज्ञवल्क्य के अनुसार बलपूर्वक बनाया गया तथा चोरों द्वारा बेचा गया दास अपने स्वामी की प्राणरक्षा करने पर दासता से मुक्त हो जाता है।⁵³ पूर्ववर्ती धर्मशास्त्रकारों के मत का समर्थन करते हुए महाभारत⁵⁴ तथा कात्यायन⁵⁵ ने भी कहा है कि दासी अपने मालिक से संतान उत्पन्न कराने पर दासत्व से छुटकारा पा जाती है। शुद्रक के मृच्छकटिक नाटक में धारक मूल्य देकर स्वतंत्रता प्राप्त करने वाली दासी का उल्लेख है। इसी ग्रंथ के एक संदर्भ में गणिका वसंतसेना शर्विलक से कहती है कि 'तुम्हारे पास इतना धन नहीं है कि तुम दासी मदनिका को मुक्त करा सको।' किंतु शर्विलक ने देय धनराशि की व्यवस्था करके उसे स्वतंत्र करा लिया था।⁵⁶

मालिक कभी-कभी स्वेच्छा से भी उत्तम आचरण वाले एवं निष्ठावान दास-दासी से प्रसन्न होकर उन्हें मुक्त कर देते थे। परंतु मृच्छकटिक में गणिका वसंतसेना कहती है कि यदि मेरे वश में होता तो मैं बिना धन लिए ही अपने समस्त सेवक-सेविकाओं को स्वतंत्र कर देती।⁵⁷ यहां वसंतसेना की विवशता का कारण नहीं बताया गया है।

नारद⁵⁸ ने दासों की मुक्ति की शर्तों पर सविस्तार प्रकाश डाला है। उनके अनुसार स्वामी के घर में उत्पन्न, क्रीत, दान में प्राप्त तथा उत्तराधिकार में मिले दासों को केवल उनके स्वामियों की इच्छा एवं अनुकम्पा से ही दासता

से मुक्ति मिल सकती है। दुर्भिक्ष के दौरान बना दास अपने स्वामी को एक जोड़ा गाय देकर, बंधक रखा गया दास धारक धन की अदायगी करने पर, ऋण के कारण बना दास ब्याज सहित ऋण चुकाने पर, निश्चित कालावधि के लिए बनाया गया दास उस अवधि के समाप्त होने पर, आत्म-विक्रयी, युद्ध बंदी तथा जुएं में हारने के कारण बना दास उपयुक्त स्थानापन्न देने पर, भरण-पोषण के लिए बने दास की मालिक पर भोजन के लिए निर्भरता समाप्त होने पर और दासी से यौन संबंध रखने के कारण बना दास उस दासी से सम्बन्ध विच्छेद कर लेने पर अपने पूर्व स्वामी को छोड़कर दूसरे का दासता स्वीकार करने वाले दास को उसके पहले वाला मालिक अपनी इच्छा व आवश्यकतानुसार पुनः प्राप्त कर सकता है। नारद ने दस्युओं द्वारा बंधे जाने के कारण तथा बलपूर्वक बनाए गए दास की दासता को असंवैधानिक ठहराते हुए, इस प्रकार के दासों को मुक्त कराना राजा का कर्तव्य माना है। उनके अनुसार अपने जीवन को खतरे में डालकर मालिक की जान बचाने वाला किसी भी कोटि का दास न केवल दासता से मुक्ति पा जाता है, अपितु स्वामी की सम्पत्ति में उसके पुत्र के बराबर अंश प्राप्त करने का भी अधिकारी होता है।

नारद द्वारा वर्णित दासों की मुक्ति संक्षेप में इस प्रकार कार्यान्वित होती थी—दास अपने कंधे पर पानी से भरा एक घड़ा रखकर अपने मालिक के समक्ष

उपस्थित होता था और मालिक उस घड़े को कंधे से उतारकर भूमि पर पटककर तोड़ देता था। कंधे पर घड़े का होना दासता का प्रतीक था जबकि उसका तोड़ा जाना उसकी स्वतंत्रता का प्रतीक था। तदुपरान्त स्वामी उसके सिर पर अन्न और पुष्पयुक्त जल छिड़क करके अनेक लोगों के समक्ष उसे तीन बार 'स्वतंत्र व्यक्ति' घोषित करता था। अंत में वह दास को पूर्वाभिमुख होकर अपने घर के प्रस्थान करने की अनुमति दे देता था।

यद्यपि कौटिल्य के अर्थशास्त्र, बौद्ध ग्रन्थों, जैन ग्रन्थों तथा गुप्तकालीन धर्मशास्त्रों—स्मृतियों में दासों की स्वतंत्रता विषयक पर्याप्त प्रावधान किये गये थे। परन्तु पूर्वमध्यकाल तक दासता से मुक्ति पाना बहुत दुर्लभ हो गया था। हरिभद्ररचित धूर्ताख्यान में विनीता नामक दासी अपने पिता से कहती है, 'मैं उस दिन की उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रही हूँ जब मुझे दासता के अत्यन्त कष्टसाध्य जीवन से मुक्ति मिलेगी।'⁵⁹ लेखपद्धति सहित किसी भी पूर्वमध्यकालीन साक्ष्यों में दासों की स्वतन्त्रता संदर्भित नियम नहीं प्राप्त होते। यद्यपि इस काल के कुछ जैन ग्रन्थों में मालिकों द्वारा दासियों को मुक्त किये जाने का उल्लेख अवश्य मिलता है।⁶⁰ उदाहरण के लिए उपमितिभवप्रपंचकथा में राजा को उसके पुत्र के जन्म का शुभ समाचार देने वाली दासी को मुक्त किये जाने का उल्लेख है।⁶¹

दासियों से निम्नलिखित कार्य कराए जाते थे— अनाज कूटना—पीसना, पानी लाना, झाड़ू लगाना, मालिक के घर को लीपना—पोतना, सब्जी काटना, मसाला पीसना, ईंधन लाना, गया—भैंस दुहना, मट्ठा एवं दही बनाकर खेत में मालिक के लिए ले जाना, खाना बनाना, मलमूत्र बाहर फेंकना, घास काटना, खेत में काम करना तथा चारा लाना।

सभी तरह के पवित्र एवं हीन घरेलू काम करने के अतिरिक्त दासियां अपनी मालकिन के साथ मंदिर भी जाती थीं। एक बूढ़ी दासी को उसके मालिक ने इसलिए पीटा था क्योंकि वह खाना पकाने के लिए जंगल से पर्याप्त लकड़ी नहीं ला सकी थी। दासियों को मालिकों द्वारा संदेश लाने—ले जाने तथा कभी—कभी गोपनीय बातों का पता लगाने के लिए भी भेजा जाता था। पूर्ववर्ती साक्ष्यों में दासियों के कार्यों में पशु चराना तथा खेत में काम करना नहीं शामिल किए गए हैं किन्तु पूर्वमध्य काल में उन्हें पुरुष दासों के साथ खेती के कार्यों में लगाया जाने लगा था। अनेक दासियां नृत्य संगीत आदि में दक्ष होती थीं। राजाओं/राजकुमारों के जन्मोत्सव तथा वसंतोत्सव में दासियों द्वारा नृत्य करने तथा गाने के विवरण मिलते हैं। राजभवनों तथा समृद्ध लोगों के घरों में वे ताम्बूल करंकरवाहिनी के रूप में भी कार्य करती थीं। कभी—कभी वे अंगरक्षिका एवं द्वार रक्षिका भी नियुक्त की जाती थीं।

पूर्वमध्य काल में भी दासियों को रखैल बनाकर रखा जाता था। मेधातिथि, विज्ञानेश्वर, एवं जीमूतवाहन ने रखैल दासियों का उल्लेख करने के साथ-साथ उनकी आयु एवं रूप-रंग पर भी प्रकाश डाला है। पूर्ववर्ती साक्ष्यों में रखैल बनाई जाने वाली दासियों की अर्हताओं/गुणों के विवरण अप्राप्य है। हरिभद्र ने रखैल दासियों से उनके मालिकों द्वारा उत्पन्न पुत्र-पुत्रियों का उल्लेख किया है, जिनका भरण-पोषण एवं विवाह आदि उनके मालिक करते थे। क्षेमेंद्र के ग्रंथों में भोग्या दासियों के अनेक उल्लेख हैं। उन्होंने दासी को कुलटा की कोटि में रखा और नियोगी के घर को भी दासियों से भरा बताया है। कभी-कभी ब्राम्हण भी दासियों से विवाह कर लेते थे। बौद्ध भिक्षु भी दासियों के साथ रमण करने में पीछे नहीं थे। दासियां धाय के रूप में भी काम करती थी। उपमितिभवप्रपंचाकथा (भाग 1, पृ0 192) में ब्राम्हण जाति की धाय का भी उल्लेख है।

पूर्वमध्य काल में दास-दासियों की स्थिति में पतन हुआ था। लेखपद्धति के अनुसार मालिक को अपने दास-दासियों को मारने, पीटने, बांधने एवं घसीटने का भी अधिकार था। स्वामी की आज्ञा का उल्लंघन करने वाली दासी को मार डालने में भी स्वामी को कोई पाप नहीं लगता था। दासी के जीवन की सार्थकता अपने मालिक की आज्ञा का पालन करने में ही थी।

परंतु कुछ साक्ष्यों में दास-दासियों के साथ अच्छा व्यवहार किए जाने के भी उल्लेख मिलते हैं। सोमेश्वर तृतीय ने दासों को नौकरों की कोटि में रखते हुए कहा कि जो व्यक्ति अपने इस जीवन तथा अगले जीवन के बारे में भला सोचता है, उसे अपने दासों एवं नौकरों का भली भांति भरण-पोषण करना चाहिए, उनकी सुरक्षा सुनिश्चित करनी चाहिए, और उन्हें थोड़ा बहुत सम्मान भी देना चाहिए। मेधातिथि ने गलती करने वाले पत्नी, पुत्र और दास को एक ही वर्ग में रखते हुए यह व्यवस्था दी कि उन्हें रस्सी या फटे बांस से डरा-धमकाकर उनकी गलती का अहसास कराना चाहिए, छोटे-मोटे अपराधों के लिए डांट-फटकार से काम चलाना चाहिए और केवल गंभीर अपराध करने पर ही मारना-पीटना चाहिए।

मालिक के पुत्र उत्पन्न होने अथवा किसी अन्य शुभ घटना घटने की सबसे पहले सूचना देने वाली दासियों को पुरस्कृत किया जाता था। सिद्धर्षि सूरी ने राजकुमार के जन्म की सूचना देने वाली दासी को राजा द्वारा रत्नजड़ित आभूषण दिए जाने का उल्लेख किया है। हरिभद्र ने ज्ञावस्ती की राजकुमारी के साथ उसकी दासी के श्रीलंका जाने का उल्लेख किया है।

कुल मिलाकर पूर्वमध्य काल में दासों तथा दासियों की स्थिति में गिरावट आई थी।

देवदासियों की सामाजिक दशा

दासियों के अर्न्तगत ही एक अन्य वर्ग के रूप में देवदासियों का वर्णन करना भी इस संदर्भ में प्रासांगिक है। देवदासियाँ मुख्यतः देवताओं की सेविका के रूप में मंदिरों, मठों व अन्य धार्मिक संस्थाओं में कार्य करती थी।

प्राचीन भारतीय साहित्य व अभिलेखों में देवदासियों का विस्तृत उल्लेख प्राप्त होता है। कौटिल्य, कालिदास, हेमचन्द्र, क्षेमेन्द्र, मेरुतुंग, संध्याकरनंदी अल्बरूनी, चाउ-जू-कुआ, डोमिंगो पायज आदि के वर्णनों के साथ-साथ अनेकानेक अभिलेखों में इनके कथानक प्राप्त होते हैं।

देवदासी प्रथा का उद्भव प्रायः तीसरी से पांचवी शताब्दी के बीच माना जाता है। भारत में इस संस्था का विकास मुख्यतः निम्न जातियों में मिलता है। यथा-आन्ध्र में बोगम, केरल में महरी, कर्नाटक में जोगती व बासवी महाराष्ट्र में मुरली, तमिलनाडु में देवरादियार, असम में नति आदि।

तंजावुर, कोनेरी, राजापुरम, तियनेलवे ली, कोणार्क मंदिर, जगन्नाथ मंदिर खजुराहो, सोमनाथ व उज्जैन के महाकाल मंदिर में ऐसी देवदासियों का व्यापक उल्लेख मिलता है। अन्ततः इस देवदासी प्रथा को समाप्त करने का श्रेय 1950 में एस मुथुलक्ष्मी रेड्डी को दिया जाता है।

तत्कालीन सामाजिक-आर्थिक जीवन में देवदासियों की महत्वपूर्ण भूमिका थी। इनके सामाजिक जीवन की रूपरेखा इस प्रकार रेखांकित की जा सकती है—

प्राचीन कालीन समाज में देवदासियों अपनी एक विशिष्ट वेशभूषा, संस्कृति, सामाजिक आचरण और धार्मिक प्रवृत्ति की सूचक हैं। इनकी सामाजिक स्थिति पर विचार करने से पूर्व तत्कालीन भारतीय समाज में प्रचलित विचारों, मूल्यों मान्यताओं के प्रति समाज के दृष्टिकोण का मूल्यांकन करना आवश्यक हो जाता है। प्राचीन काल से ही समाज में देवदासी की मंदिर में उपस्थिति देवता की पत्नी के रूप में मानी जाती रही है, जो समृद्धि एवम् खुशहाली प्राप्त करने तथा अनिष्टों से बचाव करने के लिए अनिवार्य थीं।

कई शासकों ने देवदासियों को समाज का महत्वपूर्ण अंग मानते हुए इन्हें प्रश्रय दिया। कई देवदासियाँ शासकीय अधिकारी के समान थीं। ये नगर के सर्वश्रेष्ठ भागों में निवास करती थीं। कभी-कभी देवदासियाँ मर्त्य मनुष्य से भी विवाह कर लेती थीं। कुछ-कुछ देवदासियाँ मृत प्रेमी को सम्मान देने के लिए सती भी हो जाया करती थीं।

राज-दरबार में देवदासियाँ सम्मान प्राप्त करती थीं। चंदेल राज्य की देवदासियाँ शासकीय अधिकारी के सदृश थीं। मदन वर्मा के कालिंजर स्तम्भ-लेख में नीलकंठ मंदिर की महानाचिनी पद्मावती का वर्णन है जिसे दरबार में अत्यन्त सम्माननीय पद प्राप्त था। मुख्य अधिकारियों की तालिका में

महाप्रतिहार संग्रामसिंह के पश्चात द्वितीय स्थान पर महानाचिनी का नाम था। पुर्तगाली यात्री डोमिन्गो पाएज⁶² के अनुसार देवदासियाँ नगर के सर्वश्रेष्ठ भाग में निवास करती हैं। यद्यपि वे चरित्र से शिथिल हैं फिर भी उन्हें समाज में आदर-भाव प्राप्त होता है। वे बड़े-बड़े अधिकारियों की उप-पत्नी के रूप में रहती हैं। देवदासिया मंदिरों में कुछ कर्तव्यों का निर्वहन करती थी और इसके बदले उन्हें कुछ पारितोषिक प्रदान किया जाता था। उनके कर्तव्य और पारितोषिक मंदिर-मंदिर और समय-समय पर अलग हुआ करते थे। इनके कार्यों के तहत कुछ प्रतिष्ठित और कुछ दासत्व सम्बन्धी कार्य हुआ करते थे। इन कार्यों को करने में वे पूर्ण भक्ति एवम् समर्पण प्रदर्शित करती थीं। उनके कर्तव्यों की प्रकृति ही उनकी मंदिरों तथा समाज में स्तर निर्धारित करती थीं।

पवित्र विवाह कभी-कभी सहायक नहीं होते थे। उनमें से कई ने प्रभावशाली व्यक्ति से विवाह कर लिया, तो कई पुरोहितों, राजाओं और मुखिया के साथ बिना विवाह के रहने लगी थीं।

तिरुवरुर मंदिर की रुद्र-गणिकई परवई नच्चियार संत सुन्दर की पत्नी थी।⁶³ मार्को पोलो ने कहा था कि वे विवाह से पूर्व भगवान की सेवा करती थीं।⁶⁴ मार्को पोलो के लेखन से ज्ञात होता है कि विवाहोपरांत वे ईश्वर की सेवा करते हुए दिखाई देती हैं। राजाराज-प्रथम और राजेन्द्र-प्रथम ने कुछ देवदासियों को अपनी उप-पत्नी बना लिया था।⁶⁵ कुलोतुंग प्रथम की एक रानी अनुक्कियर अर्थात् काँची के भगवान की निजी दासी थी। तियवनैक्का मंदिर

की गणिकई चोक्कातण्डल राजा जाटववर्मन सुन्दर पाण्डेय की पत्नी तथा महारानी थी।⁶⁶

1189 ई० के एक अभिलेख में अच्युतमंगलम् की एक देवदासी के विवाह का उल्लेख है।⁶⁷

देवदासियों को बच्चे पैदा करने के उदाहरण कम ही मिलते थे। जब वे ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध मर्त्य प्राणियों के साथ रहती थीं। तब वे बच्चे पैदा कर सकती थीं। 1248 ई० के एक अभिलेख जो कि तिरुवेन्नाईनल्लूर से मिला है के अनुसार तिरुमलाई अलागियान एक देवदासी का पुत्र था।⁶⁸ सामान्यतः इनल अभिलेखों में इनके पिता का नाम नहीं रहता था। किन्तु एक पाण्डेय लेख में राजा अपने मुखिया को अपना पुत्र कहकर बुलाता है। इस अनुचित पुत्र की माता देवदासी अभिरामी थी। इस पुत्र का नाम मावली वनाधी रायान था। जिसे विजयनगर के जनरल द्वारा 1400 ईस्वी में पाण्ड्य शासक चुना गया था।

समय-समय पर देवदासियाँ स्वयं को जला भी दिया करती थीं अर्थात् सती हो जाया करती थी ताकि वो अपने मृत प्रेमी को सम्मान दे सके। 1188 ई० के दो लेखों में दो स्त्रियों के स्वयं का अग्नि में समर्पित कर देने का ब्यौरा है। जो कि समर्पित देवदासी थी। इस ब्योरे में लिखित है कि महादेवा जो कि तिरुवाग्निश्वरी मंदिर में नर्तक था के साथ संगीतज्ञ स्त्री भी थी। जब नर्तक की मृत्यु हो गयी तो वह उसके प्यार में सती हो गयी। इस सती

देवदासी का उल्लेख अभिलेखों में उड़ान कोन्डा के रूप में किया गया है। स्त्री की मृत्यु के पश्चात् उसके परिवार का रख-रखाव हेतु राज्य की ओर से एक बेलि (भूमि की माप) उसके नाम कर दी जाती थीं। उसके नाम कर दी जाती थी। उसकी भूमि उसके परिवार के आखिरी सदस्य तक के रख-रखाव के लिए प्रयोग किया जाता था।

गुप्तकालीन साहित्य में स्त्रियों को प्रतिष्ठित स्थान दिया गया। गुप्त कालीन की देवदासियाँ सामाजिक जीवन में महत्वपूर्ण कर्तव्य निभाती थीं। उन्हें वारायौसीताह भी कहा जाता था। वे धनाढ्य परिवारों में बच्चों के जन्म पर मानाने वाली खुशियों में नृत्य एवम् गीत प्रस्तुत करती थीं। इसके अलावा वे मंदिरों में भी आराधना के समय नृत्य प्रस्तुत करती थीं। जैसे कि महाकाल मंदिर में वे अपने हाथ में देवता को डालने वाला पंखा पकड़कर नृत्य करती थीं।

कालिदास एक नृत्यांगना का उल्लेख करते हैं जिसके मणि रतन से जड़ित मखला एक ही लय में बजते हैं तथा पैर की पायल भी झनझनाती है। कालिदास के अनुसार देवदासियाँ चमरों को झलती थीं जिनके मुट्ठे एवम् रत्नों से जड़ित होते थे।

गुप्तों के पतन के पश्चात् हर्ष (606-647ईस्वी) सिंहासनारूढ़ हुए। देवदासियों को मिलने वाली स्वतंत्रता तथा संरक्षण इस समय भी जारी रही।

कर्नाटक में बादामी के चालुक्यो (छठी से आठवीं शताब्दी तक) के समय में हम कर्नाटक में एक देवदासी विनोपाती का संदर्भ पाते हैं, जो राजा विजयादित्य को अपना प्रेमी कहती थी। वह इतनी धनवान थी कि उसने महाकूटा के मंदिर को एक स्वर्ण का आसन, चाँदी की छतरी तथा भूमि अनुदान में दी थी। एक अन्य देवदासी जिसका नाम बड़पोट्टी था जो गोविन्दापोट्टी की पुत्री थी, एक मंदिर से जुड़ी हुई थी और उसने मंदिर को घोड़े का रथ हाथी का रथ एवम् भूमि अनुदान में दिया था।

चोलों के समय(850–1270ई0) देवदासी संस्था बहुत अच्छी तरह से व्यवस्थित थी। चोलों के क्षेत्र में स्थित अधिकांश मंदिरों में देवदासियों को नृत्य-संगीत प्रस्तुत करने के लिए नियुक्त किया गया था। राजराजा-प्रथम ने श्री राजराजेश्वर मंदिर में चार सौ देवदासियों को नियुक्त किया था। यहाँ पर नृत्य, शिक्षक, संगीतज्ञों ढोलकिया एवम् बॉसुरी वादक की भी नियुक्ति की गयी थी।⁶⁹ यहाँ की देवदासियों द्वारा लोकोपकार हेतु बहुमूल्य धर्मस्व निधि प्रदान किए गए थे। तिरुवरूर से 1040 ईस्वी के मिले अभिलेख से यह ज्ञात होता है कि एक देवरादियाल जिसका नाम कटुरल-कटुरी था वह नगन पेरुनगडोन नामक चोल नागरिक की पत्नी थी। कुलोतुंग तृतीय के एक अभिलेख से भी तन्जौर जिले के एक मंदिर की देवदासी के विवाह का उल्लेख है।

चोलों के समय की देवदासियों को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया गया है:-

क. **दत्ता**: देव जिसने अपनी इच्छा से स्वयं को मंदिर को उपहार स्वरूप दान कर दिया हो।

ख. **विक्रीता**: वह देवदासी जिसने कुछ धन के लिए स्वयं को मंदिर के प्राधिकारियों को विक्रय कर दिया हो।

ग. **भृत्या**: वह देवदासी जो मंदिर के सौभाग्य के लिए, मंदिर की दासी बन गयी हो।

घ. **भक्ता**: वह देवदासी जो भोजन प्राप्त करने के लिए मंदिर से जुड़ गयी हो।

ङ. **हरित**: वह देवदासी जो लोभी किस्म की होती थी तथा उन्हें मंदिर से हटा दिया जाता था।

च. **अलंकारा**: वह देवदासी जो अपने पेशे में बहुत अच्छे से प्रशिक्षित एवम् दक्ष हो तथा उसे गहनों के साथ राजा एवम् संभ्रान्त लोगों द्वारा मंदिर को दान दिया गया हो।

छ. **रुद्रगणिका या गोपिका** : वह देवदासी जो मंदिर से नियमित भक्ता पाती हो तथा मंदिर ने उसकी नियुक्ति निश्चित समयों पर गाने एवम् नृत्य प्रस्तुत करने के लिए किया हो।

देवदासियों की उम्र जब अधिक हो जाती थी तब उनका क्या होता था? सभी देवदासियाँ शाही संरक्षण का आनन्द नहीं उठा पाती थीं। कौटिल्य के अनुसार वे वस्त्र बुनने का व्यवसाय अपना लेती थीं। चूँकि उन्हें सिर्फ नृत्य कला का ही ज्ञान होता था तथा इसका अभ्यास वे वृद्धावस्था में करने में सक्षम

नहीं होती थी, इस वजह से वृद्ध होने पर उन्हें अभाव में जीने पर मजबूर हो जाना पड़ता था। उनका पेशा उन्हें परिवार स्थापित करने पर रोक लगाता था तथा लम्बे समय तक मंदिर में रहने के कारण वे समाज से अलग हो जाती थी। इस प्रकार वृद्धावस्था में वे मंदिर एवं समुदाय दोनों से पृथक हो जाती थी। यद्यपि कौटिल्य ने यह नियम बनाया कि गणिका, रूपाजीवा, वेश्या, देवदासी, पूमशती आदि को वृद्धावस्था में पेंशन दिया जाना चाहिए, फिर भी उनका लम्बा जीवन दो प्रकार के शोषण से समाप्त होता था— एक तो मंदिर की नर्तकी के रूप में, दूसरी पुरोहित की उपपत्नी के रूप में। इनकी देखभाल के लिए न तो राज्य का और न ही मंदिर का कोई कर्तव्य था और न कोई बाध्यता थी।

स्कन्द पुराण में भी चार प्रकार की देवदासियों का उल्लेख हुआ है। ब्रह्म दासी, क्षत्रियदासी, वैश्य दासी और शूद्र दासी। अतः कहा जा सकता है कि उस समय भी देवदासियों के विभिन्न वर्ग थे जिसमें शूद्र दासी की स्थिति अवश्य ही निम्न स्तर की रही होगी।

गाना और नृत्य प्रस्तुत करना देवदासियों के सामान्य कर्तव्य थे। उनके कर्तव्यों की प्रकृति ही उनकी मंदिरों तथा समाज में स्तर निर्धारित करती थी। इस रूप में राजराजेश्वरम् की देवदासियों के कर्तव्य उस समय के मंदिरों के देवदासियों से समान प्रकृति का था।⁷⁰ राजराजा प्रथम के 1014 ईस्वी के शिलालेख नृत्य एवम् संगीत को देवदासियों के सामान्य कर्तव्य बताते हैं।⁷¹

कोनेरीराजापुरम् से गण्डरादित्य के समय के एक लेख से देवदासियों के कर्तव्यों पर प्रकाश पड़ता है जैसे फूल तोड़ना, उन्हें माला में गूथना, मंदिर की सफाई करना तथा मंदिर में गोबर की लिपाई करना और तिरुपदिहम के स्तोत्रों का उच्चारण करना। तिरुवरियूर के वीरराजेन्द्र के लेख से यह ज्ञात होता है कि सोलह देवादासी संगीतज्ञों की नियुक्ति तेवरम् स्तोत्रों को शासत्रीय राग में गाने के लिए की गयी थी। शेक्किलार के अनुसार तिरुवरूर मंदिर देवदासियों द्वारा पवित्र स्तोत्रों के कर्णप्रिय स्वर में उच्चारण से पूरा वातावरण भक्तिमय हो जाता था।⁷²

कार्ल गुस्तावो देही ने देवदासियों द्वारा गाए जाने वाले तथा बजाए जाने वाले वाद्ययंत्रों का उल्लेख किया है जिसका प्रयोग वे शिव तथा शक्ति देवता को नींद से जगाने के लिए करती थी।⁷³ एलवानाषुर अभिलेख जिसकी तिथि 1208 ईस्वी है बताता है गाने एवम् नृत्य करने के अलावा देवदासियों के अन्य कई कार्य थे।⁷⁴

ऐसा ही राजपूताना के एक अभिलेख से ज्ञात होता है कि नृत्यांगनाएँ जिन्हें प्रमादाकुला कहते हैं भगवान की प्रतिमा की शोभा यात्रा के दौरान उनके साथ रहती थीं। अतः हम यह मान सकते हैं कि शोभा-यात्रा, रथ-यात्रा, जैसे महत्वपूर्ण सामाजिक-धार्मिक कार्य देवदासियों के बिना अपूर्ण था।

देवदासियाँ चित्रकला एवम् अन्य कलाओं में भी रूचि रखती थीं।⁷⁵ अन्तल के अनुसार वे स्त्रियाँ जिन्होंने अपनी आत्मा तिरुमल भगवान को दे

दिया था वे अपने आवास के सामने खूबसूरत चित्र बनाया करती थी। एडवर्ड कारपेंटर के अनुसार वे भूमि पर सुन्दर कोलम की आकृति बनाया करती थीं। दीवारों पर सुन्दर फूलों का खाका बनाया करती थी तथा उनके शयनकक्ष सुन्दर चित्रों से चित्रित होते थे।⁷⁶ देवदासियाँ मंदिर में होने वाले नाटकों में भी सक्रिय हिस्सा लेती थीं। देवदासियों को मंदिर के फूलों और बगीचे को संभालने की जिम्मेदारी भी दी जाती थी। इसका वर्णन गण्डरादित्य (949–957ई0) के समय के अभिलेख जो कि वलारमितश्वरा मंदिर से मिलती है,⁷⁷ में उल्लेख है। कुछ मंदिर के सुरक्षा कार्यों में लगी हुई थी। इस प्रकार देवदासियों के सामाजिक कर्तव्य मंदिर से लेकर राजमहलों तक थे।

मारवर्मन सुन्दर पाण्डय के शासन काल में मिले शिलालेख के एक लेख से ज्ञात होता है कि देवदासियों को भूमि एवम् आवासीय भूमि पर भू-स्वामित्व अधिकार अनुदान में मिला था। यह अनुदान एक तलाईकोली (दक्ष-नृत्याग्ना) और दो पिडालियार द्वारा दिया गया था। वे मंदिर को आबंटित किए जाने वाले घी की भी सुरक्षा में लगी रहती थी। देवदासियों को मंदिरों के त्यौहारों की व्यवस्था देखने को भी कहा जाता था।

वैष्णव संत रामानुज ने मंदिर के सेवकों की सेवा शर्तों में सुधार किया, जिसमें देवदासियों भी सम्मिलित थी। इन देवदासियों को उदयीयावर संहिता के अनुसार तीसरी श्रेणी में स्थान प्राप्त था। इनकी नई सेवाएँ कोईल ओलूगू में वर्णित है। इसके अनुसार देवदासियों को भोर में स्नान करने के पश्चात्

स्वयं को संवारने के पश्चात् प्रतिमा के समक्ष स्वयं को उपलब्ध रखती थी, अपने साथ पूजा की थाली लाती थी और पूजा के बर्तनों को तिवान्दिककपु (बुरी आत्मा को भगाने के लिए शाम को की जाने वाली पूजा) हेतु बदल देती थी। ऐसा वे विशेष त्यौहारों के अवसर पर भी करती थीं। जब देवता को शोभा यात्रा के दौरान बाहर ले जाया जाता था तब वे गली में उनके समक्ष नृत्य किया करती थी। इस अवसर पर वे तिरुमण्डल (महाकक्ष) में भी नृत्य किया करती थीं। विशेष अवसरों पर वे रासक्रीड़ा (कृष्ण का गोपिकाओं के साथ नृत्य) भी किया करती थीं। उनका नृत्य विनायक ताल की आवाज के साथ प्रारम्भ होता था (विनायक ताल— एक प्रकार का लय) यह ध्वजारोहण समारोह के दौरान होता था। प्रत्येक रथ के सम्मान में वे नृत्य करती थीं। एक अधूरा और विखण्डित अभिलेख जिसका तिथि 1208 ई० है, में कलत्तुर मंदिर की देवदासियों की क्रमवार सेवा का वर्णन है।

देवदासियों के दास—सम्बन्धी कार्यों में धान की मड़ाई, प्रकाश करना, चढ़ावे के चावल को धोना, रसोईघर के बर्तनों को धोना, पूजा के लिए जल लाना, आस—पास के वातावरण को सजाना, शाश्वत दीपक की देखभाल करना, भगवान के वस्त्रों को धोना, ईश्वर की प्रतिमा को दिन के समय स्थापित करने के समय चँवर डुलाना आदि उनके कार्य थे।

चोलों ने देवदासियों के क्रियाकलापों पर अधिकारिक निगरानी के लिए संस्था की व्यवस्था की थी। उनके प्रतिदिन के कार्यों पर कड़ाई से निगरानी

रखी जाती थी जिससे कि वे कर्तव्यों में अशोभनीय दुर्व्यवहार, अनैतिक एवम् नुकसानदेह कार्य न कर सकें। कुछ मामलों में अनुशासन और कल्याण के लिए परिचारकों की नियुक्ति होती थी। थंजावुर के अधिकारिक निरीक्षण को नायकनसैय्या कहते थे।⁷⁸ पुरी के जगन्नाथ मंदिर में देवदासियों के सम्बन्धों के निरीक्षण के लिए विशेष अधिकारियों की नियुक्ति की गयी थी। इस अधिकारी को दोसान्धी परीक्षा कहते थे। बाकापुर मंदिर में चार सौ तालीचे-रिप पेन्डूगल के पूर्ण निरीक्षण हेतु दो निरीक्षक जिसके नाम सबूर पारनजोति और गोविन्दा सोमानाथन था, की नियुक्ति की गयी थी परिचारक का पदाक्रम नृत्य शिक्षक के समान होती थी और दोनों को पाँच मत्तर भूमि प्रदान की गयी थी। कुछ मंदिरों में अधिकारिक निरीक्षण करने का कार्य सभा और उर के अधीन था। 1022 ई० के एक पुरालेख के अनुसार मंदिर के सेवकों का निरीक्षण यह देखने के लिए किया जाता था कि वे अपने कर्तव्यों की पूर्ति कर रहे हैं या नहीं।⁷⁹ उत्तर चोल कालीन राजाओं के समय निरीक्षण के कार्य का कड़ाई से निर्वहन नहीं किया जाता था। एक शिलालेख से यह साक्ष्य मिलता है कि मंदिर के दास, मंदिर के प्रशासनिक अधिकारी स्थानत्तर के आदेशों की अवहेलना करते थे एवम् अपने दैनिक कर्तव्यों की उपेक्षा करते थे।⁸⁰ इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि देवदासी संस्था समाज के लिए इतनी महत्त्वपूर्ण होती थी कि उन पर आधिकारिक निरीक्षण रखा जाता था।

मंदिर में सेवाओं के बदले देवदासियों को कुछ वेतन दिया जाता था। यह वेतन मंदिर की लोकप्रियता एवम् धनवैभव पर आधारित था जो इन्हें नियुक्त करता था तथा उन राजाओं पर भी इन मंदिरों एवम् देवदासियों को संरक्षण प्रदान करते थे। कुछ मंदिरों में वेतन बहुत कम तो कुछ में लाभदायक था वेतन वस्तु या नकदी किसी भी रूप में होता था।⁸¹ वेतन के अन्तर्गत पकाया हुआ चावल, धान, वस्त्र व भूमि यहाँ तक कि ग्राम तक भी दी जाती थी। वस्त्र खरीदने और अन्य आकस्मिक खर्चों के लिए भत्ता नकदी की रूप में दी जाती थी। भत्ते के रूप में सोने के सिक्के भी दिए जाते थे। मंदिर की सेवा करने के बदले भुगतान बहुधा वस्तु के रूप में की जाती थी। अनुदान के समय यह तक हो जाता था कि सेवकों को कितना अनाज देना है या फिर यह उपहार दी गयी भूमि की पैदावार पर आधारित होता था।⁸² कोकनेरीराजापुरम् से मिले सेम्बियन महादेवी के शिलालेख में वेतन के रूप में धान के अनुदान का विस्तृत वर्णन है।

राजराजा—प्रथम ने राजाराजेश्वरम् के मंदिर के सेवकों के वेतन को सरल बनाया। उनका अभिलेख जिसकी तिथि 1014 ई० है में उसने मंदिर के सेवकों जिसमें चार सौ तेलीच्चेरीपपेन्दुगल भी शामिल थी को भूमि प्रदान किया गया।⁸³ प्रत्येक तेलीच्चेरीपपेन्दुगल को भत्ते के रूप में एक वेलि भूमि की उत्पादन का एक अंश दिया जाता था जिसकी गणना 100 कलम धान के बराबर होती थी।⁸⁴ इसका कुल मूल्य 1978 ई० में 800 रुपये मासिक था। अब

चावल के एक परिणाम का मूल्य 8 रू0 हो गया था। अनुदान देने वाली भूमि तय कर दी गयी थी।⁸⁵ खेती के लिए जो भूमि भू-स्वामी के पास रह गयी थी, उसने होने वाली पैदावार को प्रत्येक सेवक के हिसाब से तय कर दी गयी थी। दूसरे मंदिरों में सेवक का हिस्सा अनाज के पैदावार के अनुसार तय की जाती थी। 100 कलम धान की काप को अदावल्लन कहते थे, जो कि राजकीय माप जिसे राजकेशरी कहते थे के बराबर होती थी।⁸⁶ राजराजेश्वर मंदिर में उन लोगों के लिए अनय विकल्पों का प्रबन्ध किया जाता था, जिनकी मृत्यु हो जाती थी या फिर वे अन्य स्थानों को चले जाते थे। इस स्थिति में आने वाली वश को कनी (वंशानुगत अधिकार) प्रयोग करने का अधिकार दिया जाता था।

ये सारे सुधार एवम् प्रबन्ध राजराजा-प्रथम के कुशल प्रशासन में सफलतापूर्वक कार्यान्वित हुई। हालाँकि राजराजेश्वरम् मंदिर की उन चार सौ तेलिच्चेरिप्पन्डुगल का राजेन्द्र- प्रथम (1012-1014 ई0) के शासन काल में क्या भाग्य रहा, कुछ ज्ञात नहीं है।⁸⁷ 1208 ई0 के एक लेख से ज्ञात होता है कि मंदिर प्रशासन ने अरुमपुलिप्पडी का एक छोटा सा गाँव एक देवदासी को जीविता के रूप में दिया गया था।⁸⁸ ऐसे ग्रामों को सभी प्रकार के करों से मुक्त रखा गया था। ग्राम के सारे लाभ उन्हें आजीवन प्रदान कर दिए जाते थे जिसे जीवनअवशेषा⁸⁹ कहते थे। किन्तु राजराजा-प्रथम द्वारा दिए गए बड़े अनुदानों पर एक कर कुट्टीकल के विषय में ज्ञात होता है शायद यह नृयांगनाओं पर लगाया गया कर था। आपदा के समय यह कर पुनः चुकाया

जाता था। कम्पहरेश्वर मंदिर के एक लेख के अनुसार ऐसे ही कर का चुकता पुरावरी (राजस्व) के समय मंदिर द्वारा मंदिर के सेवकों पर लगाया गया था।⁹⁰ कानी जीविता का अर्थ भूमि को समर्पित करना विशेषतः करमुक्त भूमि जिसका लाभ प्राप्तकर्ता जीवन भर उठाता है। यह एक प्रकार का वेतन होता है जो कुछ सेवाओं को बदले दिया जाता है। भोगा भी एक प्रकार की कर मुक्त भूमि होती थी जो किसी विशेष सेवा के बदले में दान दी जाती थी। कानी जो तमिलक कुट्टु की नृत्यांगना को दिया जाता था। उसे कौटुककानी कहा जाता था। कानि के रूप में नृत्योभोग आर्यक प्रदर्शित करने वाले को दिया जाता था। इसे चक्काक— कानी कहा जाता था। आन्ध्र—प्रदेश की देवदासियों को उनकी मृत्यु तक पुरस्कार स्वरूप जीवनामय जीविताया सनीमन्या दिया जाता था।⁹¹ नृत्य शिक्षक को जो पारिश्रमिक दिया जाता था उसे नट्टुवक्ककानी कहा जाता था या फिर नट्टुवनिलाई कहा जाता था। मंदिर को साफ रखने के लिए दिये जाने वाले पारिश्रमिकी को मेलूक्कपुरम कहते थे।⁹² अधिकतर अनुदान एवं पुरस्कार (पारिश्रमिक) शाही आदेश पर ही दिया जाता था या फिर सीधे राजा द्वारा अथवा मंदिर प्रशासन द्वारा या फिर गाँव की सभा द्वारा या व्यक्तिगत तौर पर या फिर गाँव के निवासी द्वारा दिया जाता था।

चोल काल में देवदासियों अपने नाम को अमर रखने के लिए अनेक धार्मिक एवं अन्य उपकार के कार्य किया करती थीं सैकड़ों चोल अभिलेख इस बात की पुष्टि करते थे।

उनके उपकार कार्य के सम्मान में उन्हें कई सारे विशेषाधिकार दिये जाते थे। एक शिलालेख से यह पता चलता है कि मंदिर का प्रशासन जब किसी दस्तावेज पर हस्ताक्षर करता था तो एक देवदासी को जमानती के रूप में रखता था। देवदासियों को शोभायात्रा के दौरान देवता की प्रतिमा के समक्ष चमरम झलने का एक बहुत बड़ा विशेषाधिकार मिलता था कुछ पवित्र प्रतिमाओं को मंदिर में स्थापित करने के लिए उन्हें कुछ विशेषाधिकार दिये जाते थे। एक पुरालेख के अनुसार मंदिर के स्तम्भ पर स्त्री के चित्र को एक देवदासी के जिसका नाम भोगामत्तल था से साम्यता बैठाई जाती है। उनके उपकार का विवरण तेवादियाल कट्टालाई के रूप में किया गया है।

इनमें से कुछ चुनिंदा देवदासियाँ को राजकीय सुरक्षा, संरक्षण एवं उपचार दिया जाता था। उन्हें अपने नाम को अगे नक्कन (भगवान शिव) लगाने का भी अधिकार था जैसे कि नक्कन मलालाइक चिल्पु।⁹³ कुछ ने अपना नाम सन्यासियों के नाम के पश्चात रखा था। जबकि कुछ राजाओं के नाम एवं उपनाम रखकर ही खुश थी। जानी मानी एवं विशेषज्ञ नृत्यांगनाओं को बहुत ऊँची उपाधि जैसे तलाईक्कोलि और सांथिक कुट्टु दिया जाता था।

इस प्रकार देवदासियों को भगवान राजाओं एवम् संन्यासियों के नाम अपने नाम के आगे लगाने का विशेषाधिकार प्राप्त था जो उनकी उच्च सामाजिक स्थिति को प्रदर्शित करता है।

राजराजा प्रथम के अधीन परवई नच्चियार अर्द्ध-ईश्वरीय पद तक पहुँच गयी थी। इसी तरह राजेन्द्र-प्रथम के समय नानगई परावई भी इसी ऊँचे स्थान तक पहुँच गयी थी। नानगई परावई एक अनुक्की (निजी अनुचर) थी। जिसने राजाओं का ध्यान अपने कई सारे उपकार कार्य से आकर्षित किया।

नानगई पारावई के कई सारे चित्र राजकीय सम्मान में अन्य मंदिरों में भी चित्रित किए गए हैं। अतः इसमें कोई शंका नहीं है कि देवदासियाँ की इतनी महत्वपूर्ण अंग हो चुकी थी कि उनका स्थान राजा के बगल में हो गया था।

चोलों के समय की देवदासियाँ अपने आप को कई तरह की सांस्कृतिक एवम् अध्यात्मिक कार्यों में व्यस्थ रखती थीं। उन सभी को उनके कार्यों के बदले समान भत्ते दिए जाते थे। भले ही राजराजा-प्रथम ने उनके सेवा संबंधी कार्यों उनके वेतन संरचना को सुधार और राजराजेश्वरम् की देवदासियों का ध्यान रखा पर ये सब हर मंदिरों में ठीक तरीके से लागू नहीं हुआ था। ये सभी मंदिरों की कम आय एवम् राजकीय संरक्षण की कमी से हुआ था। मंदिरों की देवदासियों के वेतन संरचना में अंतर होने के कारण भी उनके सामाजिक स्तर में अन्तर आ गया था। जहाँ ऊँचे दर्जे की देवदासियाँ प्रतिष्ठित कर्तव्य करती थी तो उन्हें अनुदान के रूप में भूमि, पैसा, सम्मान एवम् विशेषाधिकार

दिए जाते थे वहीं नीचे दर्जे की देवदासियाँ जो छोटे-छोटे कार्य करती थीं उन्हें अपर्याप्त दैनिक भत्ता दिया जाता था। निःसंदेह अत्यधिक प्रभावशाली देवदासियाँ जहाँ अर्द्ध-ईश्वरीय पदों का उपभोग करती थी वहीं उनके साथ की अन्य देवदासियाँ गरीबी एवम् तिरस्कार का जीवन जी रही थी। इसके परिणामस्वरूप इस काल के अंत तक धर्माधिकारी श्रेणी का उन्मज्जन हुआ जो कि वर्तमान प्रणाली के लिए हानिकारक था। इस प्रकार देवदासियाँ समाज की इतनी महत्वपूर्ण अंग हुआ करती थीं कि उनके वेतन-संरचना सुधार पर शासकों द्वारा भी ध्यान दिया जाता था।

देवदासियाँ अपने पूरे जीवन के लिए मंदिर को समर्पित थीं, किन्तु हम कहीं-कहीं पाते हैं कि वे विवाह कर लेती थी और एक स्थायी वैवाहिक जीवन स्थापित कर लेती थी। कभी-कभी इन देवदासियों का विवाह सम्माननीय परिवारों में होता था। यहाँ तक कि वे महलों में भी राजा की उप पत्नी बनकर प्रवेश कर जाती थी, सौन्दरमूर्ति नामक एक शैव नयनार जो आठवीं सदी में बहुत फला-फूला था, कहा जाता है कि तिरुवरियुर के भगवान शिव के मंदिर की एक नृत्यांगना सांगली से प्रेम कर बैठे और अन्ततः उससे विवाह कर लिया।⁹⁴

थंजावुर जिले के अच्युतमंगलम् में स्थित सोमनाथेश्वर मंदिर से एक लेख मिला है जिसमें मंदिर की एक नृत्यांगना के विवाह का उल्लेख है। हम पढ़ते हैं कि तिरुवदावुर में एक देवदासी को उसके द्वारा किए जाने वाले विभिन्न

कार्यों के कारण उसे सम्मानित किया गया। इन कार्यों में उसके पति भट्टन देवन द्वारा चन्द्रशेखर एवम् गौरी की मूर्ति को स्थापित करना भी था।

आंध्र प्रदेश के त्सानडबोले से भी मंदिर की एक नृत्यांगना के विवाह का उल्लेख मिलता है। डुबावड़ा के महाराजा पोटा की पुत्री सोक्कम को कहा जाता है कि वह सुन्दरता में रम्भा, उर्वशी और मेनका से भी कहीं बढ़कर थी। सोक्कम भगवान पण्डीश्वरा की सेवा करने वाली एक तिकल थी। इसकी पुत्री कामीदेवी कुलोतुंग चोड गोन्का द्वितीय की रानी थी।⁹⁵ कामीदेवी के भाई कोम्मा और सरनैय्या भी राजा को सेवा में थे। केरल के कन्डीयुर के मंदिर की देवदासियाँ उन्नियाची और कुट्टाथी को वेनाड के राजा केरल वर्मा द्वारा विवाह कर ले जाया गया था।⁹⁶ कान्डयूर के फिर से नए किए गए मंदिर का कलशम तभी किया गया जब केरल वर्मा, वेनाड के राजा, रमन कोरावर्मन ओडानड के राजा और देवदासी ने इसके विचार-विमर्श में हिस्सा लिया।⁹⁷ शुचिन्द्रम मंदिर में सुब्रमण्यम की मूर्ति स्थापित करवाने के लिए भी कामीदेवी को श्रेय जाता है। एक अन्य देवदासी चिन्नादेवी का विवाह विजयनगर के राजा कृष्ण देव राय के साथ हुआ था।⁹⁸

राजतरंगिणी में भी एक रूचिकर कहानी है, जिसमें कि एक देवदासी के विवाह पर प्रकाश पड़ता है। हम पढ़ चुके हैं कि मंदिर की नृत्यांगना के साथ नागरिक का विवाह समाज में अनैतिक नहीं माना जाता था। कश्मीर के राजा दुर्लभक प्रतापादित्य अपने व्यापारी जो रोहतक का था की सुन्दर पत्नी से मन

ही मन प्रेम करने लगा था। किन्तु वह इस बात के लिए सचेत था कि राजा एक सम्मानित व्यक्ति की पत्नी को अपने हरम में लाना चाहता है। न तो वह अपनी इच्छाओं को पूरा करने की हिम्मत जुटा पाया और न ही नरेन्द्र प्रभा के स्मणीय चेहरे को भुला पाया। नरेन्द्र प्रभा ने उसके हृदय को जकड़ लिया था। धीरे-धीरे दुर्लभक प्रतापादित्य का स्वास्थ्य खराब होने लगा। किन्तु जब नरेन्द्रप्रभा के पति को इस विषय में जानकारी हुई तो उसने ईर्ष्या एवम् क्रोधित होने के बजाए स्थिरता एवम् सहनशीलता का परिचय दिया। उसने राजा से प्रार्थना की कि उसकी पत्नी को अपना समझे और इस विषय पर चिन्तित न हो। व्यापारी के ये शब्द जो स्वामिभक्ति एवम् सांसारिक सुख से भरे हुए थे ने राजा के मन को हल्का किया और उसने नरेन्द्र प्रभा को अपने महल में लाने का मन बना लिया। किन्तु फिर भी वह साहस न जुटा पाया क्योंकि ऐसा करने से जनता के मन में उसके प्रति दुर्भावना आ जाती। व्यापारी इस बात को जान गया कि राजा सामाजिक एवम् नैतिक नियमों का उल्लंघन नहीं करना चाहता था, अतः उसने स्वयं एक हल निकाला। नरेन्द्र प्रभा एक सिद्ध नृत्यांगना थी।

अतः व्यापारी ने उसे मंदिर जाने का आग्रह किया और इस प्रकार प्रतापादित्य ने नरेन्द्रप्रभा को अपने महल ले गया। कई शासकों ने मंदिर की नृत्यांगनाओं से विवाह किया था, प्रतापादित्य ने भी यही कार्य किया और इस प्रकार वह जनता की आलोचना एवम् निन्दा से बच गया। इस प्रकार देवदासी

नरेन्द्र प्रभा का विवाह राजा के साथ हो गया और उसने राज्य के लिए कई पुत्रों को जन्म दिया।⁹⁹

इसी प्रकार आसाम में भी जोयडल की दो देवदासियाँ फुलेश्वरी और द्रोपदी जो चचेरी बहने थीं, से भी वहाँ के राजा का विवाह हुआ था। वे दोनों आसाम में शासन करने वाली रानियाँ हुईं। यहाँ तक कि उन्होंने अपने नाम के सिक्के भी चलवाए। बंगाल में एक कहावत प्रचलित है कि कवि जयदेव की पत्नी पद्मावती भी एक देवदासी थी।¹⁰⁰

देवदासियों को ईश्वर की पत्नी समझा जाता था। अतः उनसे यह अपेक्षा की जाती थी कि वे पवित्र जीवन का निर्वाह करें। कहा जाता है कि कुछ नृत्यांगनाएं सुंदरता में रम्भा, मेनका और उर्वशी से भी बढ़कर थीं अतः मंदिर के पुरोहित एवम् सन्यासी भी उन पर आसक्त हो जाते थे। अतः यह निश्चित था कि इनमें से कुछ युवतियों के सम्बन्ध का उल्लेख शिलालेख के अंशों में भी मिलता है जिसमें उन्हें ब्रह्मचारी जीवन की प्रतिज्ञा को न तोड़ने की चेतावनी दी गयी है। श्रीकाकुलम को विष्णु का गृह माना जाता है। कहा जाता है कि यहाँ तीन सौ नृत्यांगनाएं थीं। 1004 ई० में इरिबाबेयदांगा सत्याश्रया के शासन काल में उसके अधिकारी सेट्टी ब्रह्ममय्या ने मंदिर की देवदासी एवम् ढोलकिया के लिए भूमि अनुदान में दिया और मठ में रहने वाली पुरोहितों एवम् सन्यासियों के लिए भोजन एवम् कपड़ों का प्रबन्ध किया। इस शासनापत्र में यह भी निर्दिष्ट किया गया है कि अगर किसी ने मंदिर के नियमों का

अतिक्रमण करने की कोशिश की तो आचरण की देख रेख करने वाले ऊँचे अधिकारी उन्हें निकाल देंगे। बेल्लारी जिले के मोरीगोरी के उद्दीवासना मंदिर से 1045 ई० का एक लेख मिला है जिसके अनुसार छात्ररसा घट्टीयारसा सोनभोवा, गोविन्दय्या और अन्यों ने देवदासियों, गायको के समूह और मंदिर के सेवकों के रखरखाव के लिए भूमि का उपहार दिया। इसमें यह भी जोड़ा गया है कि प्रत्येक स्थान के सन्यासी अपने चरित्र को बनाए रखेंगे और यह चेतावनी दी कि चरित्रहीन सन्यासियों को स्थान के नडारसा और 12 महाजनों की मदद से भगा दिय जाएगा। शिमोगा जिले से भी ऐसे ही दो लेख मिले हैं। ये दोनों लेख बताते हैं कि उनके मठ नास्तिक मठ थे। इन मठों के शिक्षक अगर बिना ब्रह्मचर्य के होंगे तो उन्हें निकाल दिया जायेगा।

मध्यकालीन मंदिरों में पाशुपत एवम् कालासुख सम्प्रदायों ने पुरोहित का स्थान प्राप्त कर लिया था। विशेषकर गुजरात, मैसूर एवम् कश्मीर में। मंदिर के वरिष्ठ जब शक्ति एवम् धन के साथ मिल गए तब मंदिर का माहौल दूषित हो गया। पुरोहित एवम् उनके कनिष्ठ दोनों भ्रष्ट हो गये थे।

कुट्टनीमत्तम् में यह पाया गया कि मंदिर पथिकों के विश्राम के मुख्य स्थान थे। अबू जायद मंदिरों से जुड़े पथिकों के विश्राम स्थल का उल्लेख करते हैं। इनके कथन की पुष्टि मंदिर के शिलालेखीय साक्ष्यों से होती है जो मुख्य तौर पर मैसूर प्रदेश में पायी गयी है जैसे कि कालागल्लू, मनागोली,

नीलगुंड, हेसार्गे, बागेबाड़ी दम्भाल, गडग, बेहदी और कोंकण में रखोपत्न में पथिकों और तीर्थयात्रियों को देवदासियों का साहचर्य आसानी से सम्भव था।

देवदासियों के परपुरुषगामी और रसिक जीवन पर विदेशी यात्रियों ने भी वर्णन किया है। अबू जायद के अनुसार वे सार्वजनिक स्थानों पर कमरा ले लेती थी और द्वार पर पर्दा फैला कर किसी अजनबी के आने का इंतजार करती थी। वह एक निश्चित दर पर वेश्या का कार्य भी करती थी तथा उससे होने वाली आय को मंदिर के पुरोहित को दे देती थी। इस आय को मंदिर के कार्यों में लगाया जाता था। अलबरूनी भी इसकी पुष्टि करते हैं किन्तु वे देवदासियों के आय की व्यवस्था पर अबू जायद से भिन्न विचार रखते हैं। इनके अनुसार वेश्यावृत्ति से जो धन प्राप्त होता था वह राजा द्वारा ले लिया जाता था, जिसे सैन्य खर्च में उपयोग किया जाता था।

इस प्रकार देवदासी प्रथा की मर्यादा त्याग दी गयी थी और सन्यासियों तथा पुरोहितों के इन्द्रियजनित तथा विलासी चरित्र अपने निम्नतम बिंदु पर पहुँच गया था। इसका उदाहरण मंदिर की दीवारों पर चित्रित किए व्यसनी मुद्राओं से मिलता है सन्यासियों के चित्र जो कामुक मुद्राओं में है, यह दिखाता है कि धार्मिक स्थापनाओं में अनैतिक वातावरण प्रवेश कर चुका था।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची एवं पाद टिप्पणी

1. थामसन, जे०, 'आरम्भिक दार्शनिक', पृ० 1-61
2. भीष्मपर्व, V, 70-26
3. वही, XII, 173-32
4. वही, III, 13-56
5. वही, I, 60-27
6. जातक, VI- 139
7. त्रिपिटक में सारे का सारा जंगल जलाने का उल्लेख नहीं मिलता, जिससे भूमि भूमि को कृषि योग्य बनाया गया हो।
8. जातक 1-467
9. अकेले राजा महा-सुदस्सन की 84,000 स्त्रियाँ थी (दी०नि० 17-2.5) और बुद्ध की परित्यक्ता पत्नी की 40,000 सौतें थी (जा० IV-282)
10. जा० VI-49, 144
11. जा० V-178
12. धम्म०-अ०, III-166
13. II-184 एक और अनुच्छेद में दृष्टिगोचर होता है कि एक राजकुमार के अनुचर वर्ग में केवल नारियाँ होती थी। दी०नि० II-9 स्ट्रैबो के अनुसार जब कोई राजा बाहर जाता था तब औरतें उसे घेरे रहती हैं। (एन्शिएण्ट इण्डिया एज डिस्क्रीड बाई मेगस्थनीज), पृ० 72-3
14. धम्म०अ० I-190, 195, 203
15. दी०नि० III-1-16

16. ऐसा प्रतीत होता है कि पनिहारिनें प्रायः बड़े लोगों की कामुकता की शिकार बन जाती थीं। हम इसका अनुमान उस पुत्रवधू की अपने श्वसुर की कही बात से लगते हैं जिसे अपने पिता के समर्थन का विश्वास होता है कि वह कोई कुम्भदासी नहीं है जिसे कुएँ से उठा जाए हों (धम्म-अ-400)
17. थेर0-अ0 द्वाररक्षक के लिए एक और शब्द है द्वार गोप (कौषी0उप0वृ0आ0उ0, I-3) संस्कृत शब्द द्वारपाल मिलिन्दपन्हो (VI, 2-17) में अपरिवर्तित है।
18. विनय0 I-280
19. विनय0 II-159
20. जा0 I-378, III-196
21. सं0नि0अ0 IV-2-9
22. विनय0, III-161
23. अट्ठ0 III-38-1
24. म0भा0 III 62-38
25. विनय0, I-268, III-161, जा0 I-68
26. विनय0, III-15
27. दी0नि0अ0, I-16
28. गौतम, 7/14 एवं 16
29. नामसिद्धि जातक, संख्या. 97
30. अर्थशास्त्र , 3/13

31. मनु, 8/416 'आर्या पुत्ररथ दासरथ त्रय एवाधनाः स्मृतः। यन्ते समाधिच्छन्ति थम्य ते तस्य तद्धनम्।।'
32. महाभारत, 1/82/22; 5/33/68
33. विष्णु, 28/44
34. कात्यायन , 724
35. बृहस्पति, 25/82-83
36. नारद, 5/41
37. याज्ञवल्क्य, 1/157-58
38. नारद, 5/30
39. मृच्छकाटिकम् , अंक 4
40. डैरेट, जे0एम0डी0, भारूचि, एकमेन्टरी आन मनु, पृ. 210
41. स्मृतियंहिका, व्यवहारकाण्ड , 2, पृ. 285
42. अग्निपुराण , 256/20-21
43. दीर्घनिकाय, 2,72; तुलनीय, जातक,6,पृ. 300
44. एम.आई.फिनले, बिटवीन स्लेवरी एण्ड क्रीडम; पृ.248;
45. ऋग्वेद, 6/22/10
46. दीर्घनिकाय, 1/60-61
47. मज्झिमनिकाय, (नालंदा पालि प्रकाशन), 2/28
48. दीर्घनिकाय, 1.23; चानना देवराज, पूर्वोक्त, पृ.105
49. धम्मपद अट्ठकथा, भाग-1, पृ.202 तथा आगे
50. थेरीगाथा(अनु.), पृ. 65

51. अथर्ववेद, 3/13
52. ओझा, ए०पी०, प्राचीन भारत में सामाजिक स्तरीकरण, पृ. 160
53. याज्ञ वल्क्य, 2/182 ' बलाघासीकृतश्चौरे विंकीतश्चापि मुच्यते स्वामिप्राणप्रदो भक्त त्यागात्तन्नितष्क्रमादपि" ।
54. ऋग्वेद, 6/22/10
55. कात्यायन, 723
56. मृच्छकटिकम् , 4/8
57. मृच्छकटिकम् , 4, पृ.138
58. नारद , 5/29-43
59. धूर्ताख्यान , पृ. 5, 42 'कथामिकारमहं पारंतद् यास्ये:।'
60. जैन,जे० सी०, पूर्वोक्त, पृ.142
61. उपमिति, भाग,2 , पृ. 214
62. फिलोजेट बी, (संस्करण) दी विजयानगर एम्पायर एज सीन बाई डोमिनी पाएस एण्ड फरनाओ नूनीस (अनुवाद) आर० सेबेल, एन०बी०टी० दिल्ली, 1977 ।
63. पेरियापुराणम् थडुव छन्द 131-132 ।
64. मार्कोपोलो ट्रेवेल्स द्वितीय पृ० 345-346 ।
65. के०जी० कृष्णन, देवनार, मंगल कलाईगगल, खण्ड तैंतीस पी०टी० 493 जनवरी 1973 पृष्ठ 74 ।
66. टी०ए०एस खण्ड-1 पृ० 290, दामोदर चक्कियार, उन्नियाती चरितम्
67. 'एनुअल रिपोर्ट ऑफ एफीग्राफी ऑफ 1925 सं० 411 ।
68. एस० आर० बाला सुब्रमण्यम, कोप्परुनार्जिगन, पृष्ठ-139

69. 314 मोती चन्द्रा, 1976 पृ०— 280
70. के० एस० रामचन्द्रन, राजराजा प्रथम के शिलालेखों पर पाये गये शब्द नक्कन पर, जे०ए०एच०९आर०एस० विस्तार गगग, में (1975—76) पृ० 189
71. साउथ इण्डियन इन्सक्रिप्शन खण्ड—11 सं० 66
72. पेरियापुरणम तिरुनागारिच्चरप्पु, खण्ड—8
73. काल गुस्तावों देही, इन्स्ट्रुमेन्टस एण्ड पर्पजेज (स्टडीज ऑन राइट्स एण्ड रिचुअलस, इन साउथ इण्डिया पृ०—106)
74. एलवानसुर अभिलेख संख्या—47, अटल पटल उल्लिट्टा सेवाकनगल
75. एस०आर० बाल सुब्रमण्यम एम०सी०टी० पृ० 77
76. कपिलेश्वर मंदिर माइलापोर की देवदासी कंचनमाला से 25.03.1984 को लिये गये साक्षात्कार के अनुसार।
77. के० आर० श्रीनिवास अय्यर इन्सक्रिप्शन इन दी पुदुकोट्टई संख्या—30
78. आर० नागास्वामी टी०पी० के०के०— 13 पृ० 95
79. एनुअल रिपोर्ट ऑफ एपीग्राफी ऑफ 1910 संख्या—274
80. एनुअल रिपोर्ट ऑफ एपीग्राफी ऑफ 1926 संख्या—94
81. आर० नागास्वामी एस०ए०टी०एल० एस० पृष्ठ—138
82. तदैव
83. साउथ इण्डियन इन्सक्रिप्शन, खण्ड द्वितीय संख्या—66
84. साउथ इण्डियन इन्सक्रिप्शन, खण्ड द्वितीय संख्या—259—302
85. आर० नागास्वामी एस०ए०एल०टी०एस० पृष्ठ 138—139
86. एस०आर० बालासुब्रमण्यम, एम०सी०टी०सी—74

87. एनुएल रिपोर्ट ऑफ एपीग्राफी ऑफ 1895— संख्या—22
88. एनुएल रिपोर्ट ऑफ एपीग्राफी ऑफ 1937—38 संख्या—489
89. साउथ इण्डियन इन्सक्रिप्शन खण्ड 3 संख्या—26
90. एनुएल रिपोर्ट ऑफ एपीग्राफी ऑफ 1931—32 संख्या—61
91. एनुएल रिपोर्ट ऑफ एपीग्राफी ऑफ 1937—38 संख्या—489
92. साउथ इण्डियन इन्सक्रिप्शन खण्ड—5 संख्या—572
93. साउथ इण्डियन इन्सक्रिप्शन खण्ड—2 संख्या—66
94. अय्यर शैविज्म, पृष्ठ—466
95. यशोदा देवी वी, जे०ए०एच०आ०एस० 15 पृष्ठ 146
96. एलामकुलम पिल्लई, पी०एन०, कुन्हम, कोकडासंदेशम (मल्यालम)
कोट्टायम 1959 प्रस्तावना पृ० 15
97. पिल्ला, ई०पी०एन०के०, कोका संदेशम, पृष्ठ 47—48
98. नारायणन, आर्यकरण, पृष्ठ—48
99. कल्हण राजतरंगिणी पंडित रंजीत सीता राम नई दिल्ली 1968
अध्याय—4
100. तपोनाथ चक्रवर्ती बंगाल और असम के प्रारंभिक अभिलेखों के प्रकाश में
कुछ व्यवहार एवम रिवाज दी कलकत्ता रिब्यू खण्ड 135 संख्या—1 पृ.
249 ।